

अनन्तश्री विभूषित स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज

आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर
वृन्दावन

तुलसी के सीताराम



व्याख्याता
अनन्त श्रीस्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती

तुलसी
के
सीताराम

व्याख्याता
अनन्त श्रीस्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती

परमपूज्य महाराजश्री के आनन्द जयन्ती
महोत्सव के पावन पर्व पर

त्वदीय वस्तु गोविन्द !
तुभ्यमेव समर्पयेत्।

❁ ❁ ❁

नारायण पावरटेक प्रा. लिमिटेड, बड़ौदा
के सौजन्य से
आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेन्टर
आनन्द वृन्दावन
द्वारा
वितरणार्थ प्रकाशित

।। ॐ ।।

शुभाशीर्वाद

मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि पूज्य महाराजश्री जी की 106वीं आनन्द जयन्ती के उपलक्ष्य पर **'तुलसी के सीताराम'** – पूज्यश्री के इस अद्‌भुत प्रवचन का हम श्रवण करने के साथ–ही–साथ पठन भी कर सकेंगे।

इस आनन्द दायक संयोग का श्रेय पूज्यश्री के वड़ोदरा के परम भक्त श्रीसुरेन्द्र भाई–ज्योत्स्ना बेन शाह की पुत्रवधू सौ. सपना बेन–चिराग शाह को है। प्रवचन सुनकर लिखना अत्यधिक परिश्रमसाध्य है। पूज्यश्री की कृपा से सपना बहिन इसे खूब लगन के साथ अपनी साधना के रूप में निरन्तर कर रही हैं। उनको हमारे भूरिशः शुभाशीर्वाद।

'आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर', पूज्य महाराजश्री के सर्वाधिक प्रिय कार्य **'सत्संग'** अर्थात् पूज्यश्री की अमृतमयी वाणी को घर–घर में पहुँचा रही है। पूज्य महाराजश्री की इस संस्था के समर्पित प्रेमी कार्यकर्ताओं को हमारा साधुवाद!

विनयावनत

सच्चिदानन्द

तुलसी के सीताराम

संस्कृत भाषा में '**तुलसी**' शब्द का अर्थ होता है जो तौल दे। '**तुलम्, तुलाम् तुलस्यति**' जिसकी बराबरी का दुनिया में कोई हो ही नहीं। चाहे तुलसी के पौधा के लिये रखो, चाहे '**तुलसी**' नाम लो, उसकी बराबरी का कोई नहीं। तो, तुलसी ने परमात्मा के संबंध में बेजोड़ निरूपण किया है, उसकी तुलना सृष्टि में किसी पंथ, किसी सम्प्रदाय में माने हुए परमात्मा के साथ नहीं की जा सकती। उन्होंने किसी स्वर्ग, वैकुंठ या हृदय की गुहा में बैठे हुए किसी ख़ास देवता का वर्णन नहीं किया है। उन्होंने परब्रह्म परमात्मा को मानव करके दिखा दिया। मनु–शतरूपा का सारा प्रयत्न इस बात के लिये है कि परब्रह्म परमात्मा हमारे (मनु के) वंश में मानव होकर पैदा हों। परमेश्वर को एक मनुष्य के रूप में, मानव के रूप में देखने के लिये मनु–शतरूपा ने तपस्या की।

मनु है **'मनन'**। योग की भाषा में प्रख्या, प्रवृत्ति और स्थिति- ये तीन चित्-सत्त्व में मानते हैं। प्रख्या माने ज्ञान, प्रवृत्ति माने क्रिया और स्थिति माने जड़ता, यह चित्-सत्त्व के ही तीन धर्म हैं। और परमात्मा को चित्-सत्त्व माने प्रख्या के द्वारा मानव के रूप में लाना है।

शतरूपा कहते हैं श्रद्धा को जो सैकड़ों रूप ग्रहण करे, जिसके सैकड़ों रूप हों, उसका नाम होता है- **'शतरूपा'**। यह हमारे हृदय में श्रद्धा के रूप में रहती है। मनु और शतरूपा- विचारशक्ति और आस्था, मनन और श्रद्धा जब ये दोनों एकसाथ मिलकर परमात्मा को अपने वंश में लाने के लिये सर्वत्याग करके तपस्या करते हैं तब आधिभौतिक रूप से मनुष्य के रूप में, राम के रूप में परब्रह्म परमात्मा को प्रकट करते हैं। उनकी तपस्या में एक विलक्षणता आप **'रामचरितमानस'** में देखेंगे कि वे 'श्रीराम जय राम जय जय राम' का या रामषडक्षर मंत्र का या जानकी-वल्लभ मंत्र का जप नहीं करते हैं। वे द्वादशाक्षर मंत्र

का जप करते हैं जो भगवान् वासुदेव का है–

'द्वादस अच्छर मंत्र पुनि, जपहिं सहित अनुराग'।

तो, भगवन् वासुदेव अधिदैव हैं और श्रद्धा–मनु के हृदय में परमात्मा अध्यात्म है और आधिभौतिक रूप से राम के रूप में– मनुष्य के रूप में उसको प्रकट होना है तो, अध्यात्मरूप से श्रद्धा और मनु के पेट में, अधिदैवरूप से वासुदेव के रूप में और आधिभौतिक रूप से दशरथ नंदन राम के रूप में – इन तीनों रूपों में जो परमात्मा रहता है उसका मनन और उसके ऊपर श्रद्धा, यह तपस्या मनु और शतरूपा करते हैं। और, यह कोई आधिदैविक लोक का स्वामी नहीं है जिनकी वे आराधना करते हैं।

बिधि हरि हर तप देखि अपारा।
मनु समीप आए बहु बारा।।
मांगहु बर बहु भाँति लोभाए।
परम धीर नहिं चलहिं चलाए।।

(1.1.145 बालकाण्ड)

मनु और शतरूपा की तपस्या देखकर ब्रह्मा, विष्णु और महेशजी आये। ये ईश्वर के त्रिगुणात्मक अधिदैव रूप हैं। जैसे एक-एक प्रान्त के या जैसे तम के ये अधिपति हैं। रुद्र तमस्, ब्रह्मा रजस् और विष्णु सत्त्व के अधिपति हैं और ये मनु के पास आते हैं। तो त्रिगुणाधिपति होने से यह अध्यात्म हैं, और लोकाधिपति होने से अधिदैव हैं और सृष्टि-क्रिया, स्थिति-क्रिया, संहार-क्रिया इनके द्वारा सम्पन्न होती है, इसलिये भौतिकता के साथ भी इनका सम्बन्ध है। परंतु, मनु-शतरूपा ब्रह्मा, विष्णु और महेश से प्रभावित नहीं होते हैं।

तुलसीदासजी के राम का स्वरूप समझने के लिये आप इस बात पर अवश्य ध्यान दें कि यह जो मानव है। मनुवंश में उत्पन्न, मनु की संतान, यह मानव-मनुष्य, ब्रह्मा, विष्णु और महेश से बहुत ऊपर रहता है और ब्रह्मा, विष्णु और महेश से श्रेष्ठ है।

अपने को आप कभी दीन, हीन, नीच नहीं समझें। आपके भीतर वह शक्ति विद्यमान है जिसमें कितने

ब्रह्मा, कितने विष्णु और कितने शिव का समावेश हो जाता है। भगवान् रामचन्द्र का गोस्वामी तुलसीदासजी ने जो वर्णन किया वह ब्रह्मा, विष्णु या शिव के रूप में या उनके समक्ष देवता के रूप में नहीं, परब्रह्म परमात्मा के रूप में किया है। भगवान् रामचन्द्र ब्रह्मा, विष्णु, महेश को नचाते हैं।

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे।
बिधि हरि संभु नचावनिहारे।।

(अयोध्याकाण्ड)

आप लोग रामचरितमानस सुनते हैं, सब उसके जानकार हैं। जिस राम का चरित्र-मानस आप श्रवण करत हैं- इसकी विशेषता यह है कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने ग्रंथ को 'रामचरितमानस' का रूपक दिया है। जैसे गंगाजी समाप्त होती हैं सागर में और उनका उद्गम होता है मानस में वैसे ही रामचरित का उद्गम कहाँ से होता है ? 'मानस' में। जैसे सब लोग लिखते हैं- प्रेमसागर, रामसागर, कृष्णसागर। कृष्णसागर-कृष्ण कथा की धाराएँ बह-बह

कर समुद्र में जाती हैं और उसमें मिल जाती हैं। परन्तु तुलसीदासजी ने 'रामचरितसागर' नहीं लिखा 'रामचरितमानस' लिखा माने व मानस सरोवर जहाँ से रामचरित की नदी बहती है। तो, यह राम कौन है ? **'बिधि हरि संभु नचावनिहारे'**। ब्रह्मा, विष्णु और महेश को नचा रहे हैं। राम क्या एक ब्रह्मांड के ब्रह्मा, विष्णु, महेश को नचाते हैं ? इस प्रसंग को गोस्वामीजी ने 'रामचरितमानस' में दो बार लिया है।

जब सतीजी को मोह हुआ और उन्होंने अनेक ब्रह्मांड और अनेक ब्रह्मा, विष्णु, महेश देखे 'जा के रोम रोम ब्रह्माण्डा' और एक-एक रोम में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड हैं। और उन ब्रह्माण्डों में अलग-अलग ब्रह्मा, अलग-अलग विष्णु और अलग-अलग शिव हैं परन्तु-

अगनित भुवन फिरेऊँ प्रभु राम ने देखेऊँ आन।

(उत्तरकांड-41क)

यह तो भगवान् के रोमकूप में बाहर हैं, जिनको सती ने मोह के कारण देखा। कागभुसुंडिजी ने भीतर जाकर देखा। वह रामचन्द्र के मुख में प्रविष्ट हो गए

और वहाँ जाकर देखा तो कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड और उनमें कोटि-कोटि ब्रह्मा, विष्णु, महेश; परन्तु राम न देखेऊँ आन' वहाँ भी राम एक ही हैं। तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश अनेक होते हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में तीनों अलग-अलग होते हैं, एक-एक रोमकूप में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड होते हैं और शरीर में कोटि-कोटि रोम होते हैं। इसलिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश जी की तो भगवान् राम के स्वरूप में कुछ गिनती ही नहीं है।

'बिधि हरि संभु नचावनिहारे'

भगवान् राम को तो क्या उनके एक भक्त को भी ब्रह्मा, विष्णु और शिव का पद छोटा लगता है। जब भरतजी के 'मद' का प्रसंग आया तो यह बात कही गयी रामचरितमानस में कि-

'भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ'।

(अयोध्याकाण्ड 231)

यह तो जैसे किसी सरकारी अफसर का पद होता है पांच वर्ष के लिये, दस वर्ष के लिये ऐसे ही है। हम लोग तो उन राजाओं को देख चुके हैं जो अपने

बाप का बेटा होने के कारण राजा हुए हैं और जिन्दगीभर राजा रहे। उनको हम लोग अपने से कुछ बड़ा मानते हों, हाथ जोड़ते हों, प्रणाम करते हों सो बात नहीं। वही सिर झुकाते, वही हाथ जोड़ते थे। और जो पाँच-पाँच वर्ष, दस-दस वर्ष के लिये कुर्सी पर बैठते हैं- जिनकी कुर्सी आज है और कल उलट जाने की सम्भावना है, उनका मूल्यांकन किस दृष्टि से किया जा सकता है ? यहाँ तो भगवान् राम का एक भक्त बोलता है-

'भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पदु पाइ'

ब्रह्मा, विष्णु, महेश का एक-एक पद है, एक ओहदा है। भरत को यदि कोई एक पदवी भी मिल जाय तो भी उनको राज्यमद नहीं होगा। माने, भरत ब्रह्मा, विष्णु, महेश से भी ऊँचे हैं। यह जो अध्याहार्य पद है, बड़प्पन है उधार का लिया हुआ, वह किसी को परेशान तो कर सकता है, गिरफ्तार कर सकता है, जेल में डाल सकता है, जुर्माना कर सकता है, उसको गरीब बना सकता है! मानवता से ऊँचा उसका स्थान

नहीं हो सकता। भगवान् राम मानव के रूप में 'रामचरितमानस' में आये हैं। यहाँ तक कि रमा और रमापति तो रामचन्द्र के घोड़े को देख करके मोहित हो जाते हैं। आप रामचरितमानस में देखें–

हरि हित सहित रामु जब जोहे।
रमा समेत रमापति मोहे।।

(बालकाण्ड)

रमा और रमापति, लक्ष्मी और नारायण दोनों घोड़े पर अकेले राम के रूप को देखकर मुग्ध हो जाते हैं। 'मोहे' बेहोश हो कर गिर जाते हैं, ऐसी स्थिति उनकी हो जाती है।

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज के राम हैं, वे न वैकुंठाधिपति हैं और न साकेताधिपति हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने बारहों ग्रन्थों में साकेतलोक, वैकुंठलोक की तो कोई चर्चा ही नहीं की है।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा,
अविगत अलख अनादि अनूपा।

(अयोध्याकाण्ड 4)

राम साक्षात् ब्रह्म हैं। 'ग्यान अखण्ड एक सीताबर'– राम अखण्ड ज्ञान हैं। ज्ञाता और ज्ञेय के भेद से रहित साक्षात् ज्ञान स्वरूप जिसमें ज्ञातापना नहीं और ज्ञेयपना नहीं। ज्ञाता माने जीव और ईश्वर नहीं। अल्पज्ञ और सर्वज्ञ को ज्ञाता बोलते हैं। तो जिस अखण्डज्ञान में न ज्ञेय है सर्व और न ज्ञाता है– जीवत्व और ईश्वरत्व (जीव और ईश्वर) ऐसा अखण्डज्ञान श्रीरामचन्द्र भगवान् का स्वरूप है। उस अखण्ड ज्ञान स्वरूप ब्रह्म को एक मानव के रूप में प्रकट करना, यह गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज का विशेष भाव है। उनकी यह विशेषता है कि मानव के रूप में उस परब्रह्म परमात्मा का चित्रण करते हैं। बल्कि श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराज में इतनी सामर्थ्य है, उनके मानस में इतना सामर्थ्य है कि उनका मानस जिस रामचरित का सर्जन करता है, जिसकी सृष्टि करता है, निर्माण करता है उसमें स्वयं राम भगवान् प्रवेश करते हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी संसार को कितना महत्त्व देते हैं? भगवान् से अलग संसार की कीमत दो

कौड़ी की भी नहीं है। यदि यह (संसार) परमात्मा के स्वरूप में है– हम हाथ जोड़ते हैं इसको, नमस्कार करते हैं, सिर झुकाते हैं क्योंकि–

'राम सर्व सर्वगत सर्वउरालय'

राम कैसे हैं ? सर्वरूप हैं, सर्वव्यापी हैं और सबके हृदय में विराजमान हैं। सर्वरूप में विराट् हैं, सर्वगतरूप में परमेश्वर हिरण्यगर्भ हैं और सर्वउरालय रूप में प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ब्रह्म हैं। राम ब्रह्म हैं, वही अन्तर्यामी हैं, वही सर्वोपादान हैं और वही सर्वरूप हैं। तब यह सृष्टि गोस्वामी तुलसीदासजी की दृष्टि में कोई दूसरी होनी चाहिए ?

आपलोग रामचरितमानस में भगवान् राम का प्रेम कैसा है, भक्ति कैसी है, उनका चरित्र कैसा है, वे माँ–बाप को कितना आदर देते हैं, भाई से कितना प्रेम करते हैं, पत्नी से कितना प्रेम करते हैं, राम समाज का, लोक का कितना कल्याण करते हैं ? यह बात आप रामचरित– मानस के द्वारा सुनते हैं, जानते हैं। परन्तु गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज तत्त्व के रूप में राम का कैसा चिंतन करते हैं, उनकी दृष्टि से

यह सृष्टि क्या है ?–

'सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः'

यह बालकाण्ड के प्रारम्भ में मंगलाचरण है। रस्सी में जैसे साँप का भ्रम होता है, वैसे परमात्मा में यह प्रपञ्च भ्रान्त दृष्टि से सच्चा मालूम पड़ रहा है। प्रपञ्च मालूम पड़ना यह भ्रांति नहीं है। यह तो परब्रह्म परमात्मा का स्फुरण है। प्रपञ्च का मालूम पड़ना दूसरी चीज है और उसकी भ्रांति होना दूसरी चीज है। आकाश में नीलिमा का मालूम पड़ना दूसरी चीज है और आकाश से अलग उसको सच्चा समझना यह दूसरी चीज है। तो, यह प्रपञ्च क्या है ? कहते हैं कि भाई है तो परमात्मा ही, लेकिन यह जो प्रपञ्च परमात्मा से अलग मालूम पड़ता है– भ्रांति है। प्रपञ्च के रूप में मालूम पड़ता है यह सत्य परन्तु यह प्रपंच परमात्मा से अलग कोई सत्य है– ऐसा नहीं है। दो सत्य स्वीकार करना– यह भ्रम है। सत्य हमेशा एक होता है, हर जगह ही एक होता है, हर में एक होता है। हर समय, हर स्थान, हर वस्तु में सत्य, सत्ता, अखण्डसत् एक ही होता है। वह अलग-अलग नहीं

होता है। तो, दुनिया मालूम पडती है यह तो ठीक है। मालूम पड़ती है, मालूम पड़ना सच है, परंतु सच परमात्मा के अलग होकर इसका सच होना यह गोस्वामीजी महाराज को मान्य नहीं है।

जथा गगन घन पटल निहारी।
झँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी।।
चितव जो लोचन अंगुलि लाए।
प्रगट जुगल ससि तेहि के भाए।।
उमा राम बिषइक अस मोहा।
नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा।।

विनयपत्रिका में बोलते हैं–

धुअें केसो दौड़ हर देखि तू न भूलि रे।

जैसे धुअें का दौड़हर होता है, वैसे भगवान् राम से अलग यह दुनिया मालूम पड़ रही है।

नौकारूढ़ चलत जग देखा।
अचल मोह बस आपुहि लेखा।।
बालक भ्रमहिं न भ्रमहि गृहादीं।
कहहिं परस्पर मिथ्यावादी।।

(उ.का. 73)

यह भ्रम की लीला है। गोस्वामी तुलसीदासजी के मत में माया भी सच्ची नहीं है।

उमा राम बिषइक अस मोहा।
नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा।।

यह जगत क्या है ? **'भास सत्य इव मोह सहाया'** यह माया मोह की सहायता से सच्ची मालूम पड़ती है। तुलसीदासजी के मत में जगत् मृषा है। और, जड़-चेतन की ग्रंथि भी मृषा है।

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई।
जदपि मृषा छूटत कठिनई।।

गोस्वामी तुलसीदासजी के मत में 'रामचरित-मानस' के मत में कर्त्ता जीव नहीं है।

बोले बिहँसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ।।

(बालकाण्ड 124-क)

जीव कर्त्ता नहीं है।

नट मरकट इव सबहि नचावत।
रामु खगेस बेद अस गावत।।

(कि. का. 7)

नट-मरकट यह ईश्वर और जीव का दृष्टांत है।

उमा दारु जोषित की नाईं।

सबहिं नचावत राम गोसाईं।।

(कि. का. 11)

यह जड़ का दृष्टांत है। सारे जड़ का संचालन भी राम ही करते हैं और सारे जीवरूपा चेतन का संचालन भी राम ही करते हैं। तो, किसी जीव और जड़ में स्वतंत्र कर्त्तृत्व नहीं है, और चिद्‌जड़ की ग्रंथि भी नहीं है। और भगवान् रामचन्द्र भक्ति से मिलते हैं सो तो ठीक है परन्तु 'ज्ञानगम्य जय रघुराई'। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा कि ये रामचन्द्र भगवान् ज्ञानगम्य हैं। ज्ञानगम्य हैं माने ज्ञान से मिलते हैं। तो, आप 'रामचरितमानस' का यह जो दृष्टिकोण है, जो सिद्धांत पक्ष है, उसको अपनी आँख से ओझल न करें। उसमें जो भक्ति है, वह तो सर्वोत्तम है।

आप एक बात पर ध्यान दो। रावण ने शिवजी के जो रुद्र रूप हैं उनकी पूजा की। रुद्ररूप ग्यारह होते हैं। एकादशरुद्र प्रसिद्ध हैं। रुद्र का अर्थ होता है

'भयंकर'। रुद्र माने रुलाने वाला। दस इन्द्रियों का रूप रुद्र है। इन इन्द्रियों के द्वारा जो ग्रहण किया जाता है– हाथ के द्वारा आदातव्य, पांव के द्वारा गंतव्य, नेत्र के द्वारा द्रष्टव्य, श्रवण के द्वारा श्रोतव्य, त्वचा के द्वारा स्पर्शटव्य। ये सब दसरूप रुद्र के विषयरूप हैं और बड़े भयंकर है। ये मनुष्य को फँसाते हैं।

कोई शब्द में, रूप में, गन्ध में, चलने–फिरने में, करने–कराने में और खाने–पीने में, भोग–राग में ये मनुष्य को फँसाते हैं। रावण को ये दसों मुख प्राप्त थे। दससिर काट–काट के उसने रुद्र को अर्पित किये और दस रुद्र उसके ऊपर प्रसन्न हुए। दस इन्द्रियों को उनके भोग मिले। परन्तु, एक रुद्र ऐसा है महाराज, जो इस संसार की भीषणता के द्वारा, भयंकरता के द्वारा इससे वैराग्य प्रदान करता है। उस रुद्र की, माने ग्यारहवें रुद्र की पूजा रावण ने नहीं की। वह दसमुख हो गया। दसों मुखों से विषयों का भोग वह करता है, परन्तु इस भोग में जो वैराग्य होना चाहिए, वह वैराग्य का देवता रुद्र उसके ऊपर प्रसन्न नहीं

हुआ। वह हो गया नाराज कि यह हमारी पूजा नहीं करता है। वही ग्यारहवाँ रुद्र हनुमान होकर प्रकट हुआ। वह वैराग्य का देवता है, जो रावणपक्ष में कभी जाता ही नहीं। तो, दस इन्द्रियों के द्वारा दस विषयों का भोग करने वाला 'दसमुख' और दसों इन्द्रियों को काबू में रखकर भगवान् की ओर चलने वाले 'दशरथ'। तो दशरथ वंश में, मानसवंश में (दशरथ और मानस दोनों एक ही हैं, मन ही मानस है– 'मन एव मानसम्' मन का ही नाम मानस है) मानस में रामचरित्र प्रकट हुआ, राम भगवान् आये और दशरथ के पुत्र बने। यह राम भगवान् कौन हैं ? देखो, इन्द्रियों की इनमें गति नहीं है–

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।

असि सब भ्राँति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।
(बालकाण्ड)

ऐसा यह परमात्मा, 'बिगत विनोद'– इसमें कोई विनोद नहीं है। यह परमात्मा अज है, निर्गुण है, निराकार है, र्निविकार है, निर्विशेष है। परन्तु भक्ति की ऐसी महिमा है–

व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत बिनोद।
सोइ अज प्रेम भगति बस, कौसल्या के गोद।।
(बालकाण्ड 194)

वह परब्रह्म परमात्मा आपकी गोद में, आपका बालक बनकर कौशल्या की गोद में कौशल्या का बालक बनकर मनुष्य के रूप में खेल रहा है। कहाँ परब्रह्म परमात्मा और कहाँ नन्हा–मुन्ना बालक! बोले–भाई! सबके बालक परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप ही हैं। हाँ, स्वरूप तो हैं, परन्तु पहचानती तो उसको कुशल बुद्धि कौशल्या ही है। कुशल बुद्धि जो है–

दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्म दार्शिभिः।

लगा लो समाधि चाहे सवितर्क समाधि लगा लो चाहे सविचार समाधि लगा लो। स्थूलालंबन से सवितर्क समापत्ति और सूक्ष्म–आलंबन से सविचार समापत्ति, निरालंब अपनी इन्द्रियों को निर्विषय करके रखने से संप्रसन्न इन्द्रियों का नाम आनन्दानुगत समाधि और केवल अस्मि मात्र का निर्भास यह अस्मितानुगत समाधि। परन्तु यदि विवेक ख्याति नहीं होगी तो ये चारों के चारों समाधि सार्थक नहीं होंगी। आजकल जो लोग आसन सधा देते हैं, प्राणायाम करवा देते हैं और जो लोग समाधि के बारे में कुछ नहीं जानते–उनको यह प्रतीति करवा देते हैं कि तुम्हारी समाधि लगा दी। भले ही आपकी संप्रज्ञात–समाधि लग जाय, परंतु यदि विवेक ख्याति नहीं होगी तो यह संप्रज्ञात समाधि जड़ समाधि रह जायेगी और असंप्रज्ञात–समाधि तो बिल्कुल लगेगी ही नहीं। विवेक ख्याति के बिना योग में जैसे असंप्रज्ञात समाधि नहीं हो सकती; कुशल बुद्धि के बिना तत्त्वमसि महावाक्यजन्य वृत्ति के द्वारा वेदान्त ज्ञान में अविद्या

निवर्तक प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ब्रह्म का बोध नहीं हो सकता, उसी प्रकार जब तक बुद्धि हमारी कौशल्या नहीं बनेगी तब तक गोद में आये हुए राम को भी हम पहचान नहीं सकते।

'सोइ अज प्रेम भगति बस कौसल्या की गोद'

यह कौशल्या जो है यह वेदान्तजन्य प्रज्ञा है, यह कुशल बुद्धि है। ऐसी कुशल बुद्धि है, जो जड़ता का, अनात्मा का तिरस्कार कर दे और अपने पेट में केवल परमेश्वर को रखे। गोस्वामीजी ने इसकी सूचना दी। आप जानते हैं विनय पत्रिका में–

तुलसिदास हरि–गुरु करुना बिनु।
बिमल बिबेक न होई।।
बिनु बिबेक संसार घोर निधि।
पार न पावे कोई।।

जब तक ईश्वर की कृपा, गुरु की कृपा करुणा नहीं होगी तब तक विमल विवेक का उदय नहीं होगा। विमल विवेक माने विषय के पक्षपात से विनिर्मुक्त विवेक और, **'बिनु विवेक संसार घोर निधि पार न पावै**

कोई'। जब तक विवेक का उदय नहीं होगा तब तक यह संसार के भयंकर समुद्र से कोई पार नहीं हो सकता। भगवान् की भक्ति से छलित चित्त में विमल विवेक का उदय होता है। और, जब विमल विवेक का उदय होता है तब

तुलसीदास यह चिद् विलास जग,
बूझत बूझत बूझे।

यह जो जगत् है वह केवल चेतन का विलास है, इसमें जड़ता नाम का कोई पदार्थ नहीं है।

आनन्द सिंधु मध्य तव बासा,
बिनु जाने कस मरसि पियासा।

(वि. प.)

आनन्द के समुद्र में तुम्हारा निवास है, परन्तु पहचानते नहीं हो। कोई आनन्द के समुद्र में पड़ा हो, गिरा हो, रह रहा हो परन्तु उसको पहचान न हो वह भ्रम वश समझता हो कि यह विष का समुद्र है और अपना मुँह उसमें न लगने दे, अपने शरीर का सम्पर्क न होने दे तो वह भ्रांति के कारण, अज्ञान के कारण

आनन्द के समुद्र में रहता हुआ भी उसके मुख से, उसके स्वाद से वंचित हो जाता है। तो, तुलसीदासजी कहते हैं कि यह जगत तो चिद् विलास है, आनन्द सिंधु है। कबीर साहब का कहना है–

धोबिया जल बिच मरत पियासा,
जल में ठाढ़ पिये ना मूरख,
अच्छा जल है खासा।

धोबी जल में तो खड़ा है, परन्तु प्यासा मर रहा है। इसी प्रकार यह जीव परमेश्वर के अन्दर रह रहा है, परन्तु परमेश्वर को पहचानता नहीं है।

गोस्वामीजी ने जहाँ रामचन्द्र के विवाह का वर्णन किया वहाँ है कि विश्व शत्रुघ्न हैं, तैजस लक्ष्मण हैं, प्राज्ञ भरत हैं और तुरीय राम हैं। जैसे चारों देवताओं की चार वृत्तियाँ जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय उन चारों के साथ रहती हैं, विभु में जैसे अपने-अपने विभु के साथ वृत्तियां रहती हैं। वैसे महाराज जनक ने अपनी चारों कन्याएँ विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय रूप शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत और राम को समर्पित

कर दीं। आप वहाँ देख लेना कि साक्षात् अधिदैव, अध्यात्म और अधिभूत का जो आधार रूप परब्रह्म परमात्मा है, उसी के चरित्र का वर्णन 'रामचरित-मानस' में आया है। लीला ऐसी निकाली गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने कि यह सीताजी भी लक्ष्मी नहीं हैं। उन्होंने सीताजी और लक्ष्मीजी की तुलना करी है। वैष्णव उस भाव से बहुत आक्रांत होते हैं–

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई।
परम रूपमय कच्छपु सोई।।
सोभा रजु मंदरु सिंगारू।
मथै पानि पंकज निज मारू।।
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल।।

(बालकाण्ड)

'जौं छबि सुधा पयोनिधि होई' छबि सुधा का तो समुद्र होय और 'परम रूपमय कच्छपु सोई' स्वयं भगवान् सुन्दर कच्छप बनकर आवें, और शोभा की रस्सी होय, वासुकि नाग की नहीं **'सोभा रज्जु'** और

मंदराचल पहाड़ न होय शृंगाररस मंदराचल बने **'मंदरु सिंगारू'** और देवता-दैत्य मंथन न करें **'मथै पानि पंकज निज मारू'** स्वयं कामदेव अपने हाथों से मंथन करे **'एहि विधि उपजै लच्छि जब'** ऐसे यदि लक्ष्मी की उत्पत्ति हो और वह सुंदरता सुख की मूल हो **'तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सिय समतूल'** तब भी बड़े संकोच के साथ कवि कहेंगे कि ऐसी लक्ष्मी सीताजी की बराबरी कर सकती है। कहने का अभिप्राय यह सीताजी, लक्ष्मीजी से बहुत ऊपर हैं।

उपजहि जासु अंश गुणखानि।
अगनित उमा रमा ब्रह्मानी।।

सीताजी के अंश से अगणित उमा, अगणित रमा (लक्ष्मी) और अगणित ब्रह्माणी पैदा होती हैं। यह है श्रीजानकीजी का स्वरूप! सीता-राम के प्रेम में, उनके सौन्दर्य में गोस्वामीजी ने जो सौन्दर्य का चित्रण किया है, लोग कहते हैं कि ऐसी सुंदरता देखी कि मन ललच गया, आँख ललच गयी, उपभोग के लिये बड़े-बड़े योगियों का हृदय सतृष्ण हो गया। परन्तु,

गोस्वामीजी ने जिस सौन्दर्य का निरूपण किया, उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया कि हम उस सौन्दर्य का चित्रण करते हैं जिसको देखकर काम, रति दोनों लज्जित हो जाते हैं। कामवासना निवृत्त हो जाती है। सुन्दरता वह नहीं है जिसको देखकर हमारे मन में संभोग की तृष्णा का उदय हो।

आप जब बगीचे में एक सुन्दर पुष्प देखते हैं तो आपके मन में आता है कि आहा बहुत सुन्दर पुष्प है। फिर? कि इसको तोड़ लें। तो तोड़ लेते हैं। फिर? कि इसको देखें। देखें तो फिर इसको अपनी त्वचा से लगावें, कि फिर इसको सूँघ लो। और इसके बाद थोड़ी देर तक हाथ में रखें। कुम्हलाने लगे तो मसल कर उसको धरती पर फेंक दें और उसको जूते से कुचलते हुए चलें। आपके सौन्दर्य प्रेम की यही स्थिति है। संसार में जिसको आप सुन्दर देखते हैं, उपभोग करके उसका सत्यानाश कर देना चाहते हैं और कर देते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने जो सौन्दर्य चित्रित किया है, श्रीसीताराम जी का जनकजी के महल में।

विवाह मंडप में 'भांवर' दे रहे हैं– 'भांवरी देहीं'। उनकी उपमा किसी प्रकार कही नहीं जाती। उपमा क्या दी ? एक उत्प्रेक्षा की। उपमा में और उत्प्रेक्षा में अंतर होता है।

राम सीय सुन्दर प्रतिछाहीं।
जगमगात मनि खंभन माहीं।।
मनहुँ मदन रति धरि बहुरूपा।
देखत राम बिआहु अनूपा।।
दरस लालसा सकुच न थोरी।
प्रगटत दुरत बहोरि-बहोरी।।

(बालकाण्ड 324-2,3)

सीता और राम से रति और काम की उत्प्रेक्षा न करके, मणिस्तंभ में खंभे में जो उनकी परछाईं पड़ती है उसको वे सीता की परछाईं को रति और राम की परछाईं को काम कहते हैं और उनके हृदय में इतना संकोच है कि वे सीता-राम के सामने आने में बहुत ही संकोच करते हैं। इसका अर्थ है कि जिस प्रेम का चित्रण गोस्वामीजी महाराज करते हैं उसमें काम का

प्रवेश नहीं है, उसमें तो शुद्ध प्रेम ही प्रेम है। उसमें संभोगाभिलाप नहीं हैं, उसमें तो शुद्ध प्रेम, केवल रसानुभूति, केवल परमात्मा की अनुभति–ही–अनुभूति है। तुलसीदासजी काव्य की दृष्टि से श्रीरामचन्द्र के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं–

कहहु सखी अस को तनुधारी।
जो न मोह यह रूप निहारी।।

(बालकाण्ड)

साँपिन और बिच्छु भी, जलचर भी, पक्षी भी उनके सौन्दर्य को देखकर मुग्ध होते हैं। राक्षस, ब्रह्मज्ञानी राजा जनक और ब्रह्मज्ञानी निवृत्ति परायण सनत् कुमार, ये सब श्रीरामचन्द्र के सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाते हैं। न कोई स्वर्ग में, न कोई वैकुंठ में, न कोई गोलोक में, न कोई साकेत में और न कोई आँखों से ओझल परोक्ष रूप में ऐसा परमेश्वर है, जो इस मानव राम की बराबरी कर सकता हो। सबसे अधिक सौन्दर्य, सबसे अधिक माधुर्य, सबसे अधिक ऐश्वर्य, सबसे बड़ा परमेश्वर गोस्वामी तुलसीदासजी

ने मनु वंश में शतरूपा के गर्भ से प्रकट करके सारी दुनिया को दिखा दिया– परमेश्वर का यह मानवीकरण, रस का यह साधारणी करण, चेतन का मानवीकरण। सच्चिदानन्दघन का यह मानवीकरण गोस्वामी तुलसीदासजी का विशेष है। उन्होंने सातवें आसमान में छिपे हुए पांच कोश के भीतर छिपे हुए, चार अवस्थाओं में गुप्तरूप से रहने वाले, कार्य–कारण भाव से विवर्तित होने वाले परब्रह्म परमात्मा को लाकर हमारे बीच में एक मानव के रूप में प्रतिबिम्बित कर दिया। क्या आपके मानस में यह मानव राम छिपा हुआ नहीं है ? यदि छिपा हुआ है, तो आप उसको क्यों नहीं प्रकट करते ?

❀ ❀ ❀